Indian Scholar
ISSN 2350-109X
www.indianscholar.co.in
An International Multidisciplinary Research e-Journal

संस्कृत साहित्य में मानवाधिकार की अवधारणाएँ

डॉ0 धनंजय कुमार मिश्र
अध्यक्ष संस्कृत विभाग
संताल परगना महाविद्यालय,
सिदो–कान्हु मुर्मू विश्वविद्यालय,
दुमका (झारखण्ड) 814101

मानव जाति सृष्टि का उत्कृष्टतम उपहार है। यह मान्यता है कि चौरासी लाख योनियों में मानव योनि अपने बुद्धि, विवेक और ज्ञान के बल पर अन्य योनियों से न केवल श्रेष्ठ है अपितु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को वह अपने ज्ञान से मुट्ठी में कर लेना चाहता है, जीत लेना चाहता है।

प्रगति के इस दौड़ में मानव समाज को कई विसंगतियों का सामना करना पड़ रहा है और इसके निवारण के लिए मानवीय संस्थायें नित नए प्रारूप तैयार कर उसे अमल में लाने का प्रयास कर रही है। ''इन्सान का इन्सान से हो भाई चारा'' – कुछ यही पैगाम मानवाधिकार को जन्म देता है।

मानवाधिकार शब्द मूलतः दो शब्दों से बना है – मानव और अधिकार। विशिष्ट अर्थ में मानवाधिकार उन अर्थों को व्याख्यायित करता है जिससे मानव जाति अपने मूल–भूत अधिकारों एवं स्वतन्त्रता का हकदार है।

अधिकार के अन्तर्गत न केवल राजनैतिक नागरिक अधिकार का समावेश होता है वरन् जीवन का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, अभिव्यक्ति की आजादी का अधिकार, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समानता के अधिकार आदि का भी समावेश होता है। साथ ही साथ प्रत्येक मानव का इच्छानुसार सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार, काम करने का अधिकार, भोजन का अधिकार, शिक्षा का अधिकार आदि अनेक अधिकारों का समावेश मानवाधिकार के अन्तर्गत किया जाता है, जिसका मानव जाति आग्रही है। ऐसे कुछ मानवाधिकार हैं जो कभी छीने नहीं जा सकते क्योंकि मानव की अपनी एक गरिमा है और इस कड़ी में स्त्री–पुरुष के समान अधिकार हैं।

यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसम्बर 1948 ई0 को मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा को अंगीकार कर संघ के राष्ट्रों को मार्गदर्शन और प्रेरणा प्रदान की तथापि इसके बीज तो हजारों वर्ष पूर्व पवित्र भारत भूमि के ग्रन्थ–रत्नों में दिखाई देते हैं। मानवाधिकार से सम्बन्धित घोषणा पत्र की अधिकांश बातें संस्कृत साहित्य में प्राचीन काल से ही प्राप्त होती है।

प्रस्तुत पत्र में हमारा ध्येय उन्हें पुनः पाठकों, बुद्धिजीवियों और शोधप्रज्ञों के समक्ष प्रस्तुत कर संस्कृत की समृद्धि को दिखाना तथा शोध की नई राह उद्घाटित करना है।

मानवाधिकार के सार्वभौम घोषणा के प्रथम अनुच्छेद के अनुसार मानव को जन्मजात स्वतन्त्रता और समानता प्राप्त है। मानव जाति को परस्पर भाईचारे के भाव से वर्ताव करना चाहिए। अनुच्छेद एक की इस बात को ऋग्वेद के दशम मण्डल के संज्ञान सूक्त में बड़े ही मार्मिक और सटीक ढ़ंग से भारतवर्ष के ऋषियों ने प्रस्तुत किया है। यथा –

''समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषम्।'' (ऋग्वेद 10/191/03)

अर्थात् समस्त प्रजाजनों के विचार एक जैसे हों। शासन में प्रजा का प्रतिनिधित्व करने वाली समिति एक हो। इनके मन एक जैसे हों। इसी सूक्त में आगे मानवाधिकार का बीज रूप विचार द्रष्ट्व्य है –

''समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।'' (ऋग्वेद 10/191/04)

हम मानवों के संकल्प या निश्चय समान हों, हृदय एवं मन समान हो जिससे परस्पर सुसंगठित होकर मानव समाज अच्छी तरह रह सके। इतना ही नही समानता के अधिकार का यह रूप ऋग्वेद में ही देखिये –

''संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।'' (ऋग्वेद 10/191/02)

हे मानव! तुम सब मिलकर चलो। मिलकर प्रेम से परस्पर बोलो। तुम्हारे मन समान ज्ञान वाले हों। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सार्वभौम घोषणा के द्वितीय अनुच्छेद में भी तो यही बातें कही गयी हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने स्पष्ट कहा है कि जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनैतिक या अन्य विचार प्रणाली जन्म, सम्पत्ति या अन्य मर्यादा के कारण मानव–मानव में भेद–भाव का विचार न किया जायेगा। सार्वभौम घोषणा में वर्णित कुल तीस अनुच्छेद हैं। इन अनुच्छेदों में अनुच्छेद तृतीय में व्यक्ति के जीवन, स्वाधीनता और वैयक्तिक सुरक्षा का अधिकार वर्णित है। अनुच्छेद पंचम में शारीरिक यातना, निर्दयता, अमानुषिक या अपमानजनक व्यवहार के निषेध का वर्णन है। इन तथ्यों का मूल भी संस्कृत साहित्य में प्राप्त होता है। बोधायनधर्मसूत्र में इस बात का मूल अहिंसा पर बल देते हुए कहा गया है –

''अहिंसया च भूतात्मा मनः सत्येन शुध्यति।'' (बोधायनधर्मसूत्र)

अर्थात् मानव जाति की आत्मा अहिंसा से तथा मन सत्य से शुद्ध होता है। यहाँ सत्यनिष्ठा के साथ मानव मात्र के प्रति सद्व्यवहार का वर्णन है और मानवाधिकार का यह मूल है। इतना ही नहीं मानवाधिकार का यह मूल मंत्र ईशवास्योपनिषद् में कितने सूक्ष्म रूप से वर्णित है। देखा जाय –

''यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानम् ततो न विजुगुप्सते।।'' (ईशा0 –6)

जो व्यक्ति समस्त मानव जाति को अपने में ही देखता है और समस्त मानवों में अपने आपको देखता है वह मानव मात्र से घृणा नहीं करता है। कितना उदात्त नैतिक उपदेश है मानवाधिकार की रक्षा के लिए। वाजसनेयी संहिता में और स्पष्ट रूप से इस बात को कहा गया है – ''मा हिंसीः पुरूषं जगत्'' (वाजसनेयी संहिता 16/3) – हे मानव ! तुम संसार में हिंसा मत करो।

संस्कृत साहित्य स्त्री–पुरुष समानता का पोषक है। यद्यपि भारतवर्ष का समाज पितृसत्तात्मक है तथा सदियों से रहा है परन्तु मानव–स्त्री (नारी) के प्रति सदैव सद्व्यवहार और उच्च मर्यादा का पालन करने का आदेश और उपदेश संस्कृत वाङ्मय में वर्णित है। निश्चित रूप से यह मानवाधिकार को पुष्ट करने वाला है। आपस्तम्भसूत्र में स्पष्तः वर्णित है कि पति और पत्नी दोनों समान रूप से धन के स्वामी हैं। नारियों के प्रति अन्याय न हों, वे शोक न करें और न वे उदास होने पाये –

''शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशुतत्कुलं। न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा।।''

मानवाधिकार की सार्वभौम घोशणा में विश्व–बन्धुत्व की भावना परोक्ष रूप से स्वीकृत है। बन्धुत्व की भावना सदैव मानव जाति के लिए हितकर है। संस्कृत साहित्य के प्राचीन ग्रन्थों में विश्व–बन्धुत्व की भावना का उपदेश प्रायः दृष्टिगोचर होता है। वेदों में तो यह भावना अतिशय है। संकीर्ण भावना या प्रतिस्पर्धात्मक वैमनस्य की भावना से ऊपर उठकर विश्वबन्धुत्व की भावना का जैसा चित्र वेदों में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। विश्वबन्धुत्व की यह भावना मानवाधिकार की रक्षा के लिए मेरूदण्ड के समान है। उदाहरण के तौर पर यजुर्वेद का यह उपदेश द्रष्ट्व्य है जिसमें कहा गया है कि – 'मैं प्राणिमात्र को मैत्रीपूर्ण दृष्टि से देखूँ तथा समस्त जीव भी मुझे मैत्रापूर्ण निर्भय दृष्टि से देखें। इस प्रकार हम एक दूसरे के लिए मित्रवत् रहें।'

''मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।'' (यजु0 36/18)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यद्यपि मानवाधिकार कानून और मानवाधिकार की अधिकांश अपेक्षाकृत व्यवस्थाएँ समसामयिक इतिहास से सम्बन्धित हैं तथापि इसके बीज संस्कृत वाङ्मय में यत्र–तत्र–सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। भारतीय जनमानस इन तत्वों को भली–भाँति समझता है और अपने जीवन में प्रयोग करना चाहता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जहाँ मानवाधिकार का परिदृश्य विसंगतियों और विद्रुपताओं से भरा पड़ा है वहीं भारतवर्ष के नागरिक सदियों से मानवाधिकार के उल्लंघन को हेय तथा निकृश्ट मानते हुए सर्वे भवन्तु सुखिनः, वसुधैव कुटुम्बकम्, यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः, कृण्वन्तो विश्वमार्यम्, आदि का जयघोष करते हुए मानव–अधिकारों के निर्वहण एवं पालन तथा संरक्षण के पक्षधर हैं।